Gyanvividha, Vol.-2; Issue-1 (January-March) 2025 : PP-213-216

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

**ISSN : 3048-4537(Online)**
**3049-2327(Print)**
**IIFS Impact Factor-2.25**
Vol.-2; Issue-1 (Jan.March) 2025
Page No.- 213-216
©2025 Gyanvividha
www.journal.gyanvividha.com

**गगनदीप कौर**
शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय,
पटियाला.

Corresponding Author :

**गगनदीप कौर**
शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय,
पटियाला.

# संत काव्य में धार्मिक चेतना का स्वर

मध्यकाल में धर्म का बोलबाला होने के कारण धर्म को मानव जीवन का अनिवार्य अंग स्वीकार किया गया। मनुष्य को विवेकशील प्राणी बनाना धर्म का कार्य है, लेकिन धीरे-धीरे धर्म के नाम पर अंधविश्वासों व पाखण्डों को बढ़ावा मिलने लगा। धार्मिक व्यवस्था बाह्य कर्मकण्डों तक सीमित होने लगी। तत्कालीन जनता भी लकीर का फकीर बनने लगी। हिन्दुओं की धार्मिक भावना अनेक मत-मतान्तरों, संप्रदायों व इस्लाम की कट्टरवादिता के कारण दिनों-दिन क्षीण होती जा रही थी। ऐसे समय में सच्चे मार्गदर्शक की आवश्यकता थी जो जनसाधारण को धर्म के वास्तविक स्वरुप की पहचान करा सकें। अतः संतों ने प्राचीन परम्पराओं, अंधविश्वासों, रुढ़ियों का विरोध करते हुए समाज को लोक कल्याणकारी दिशा प्रदान की। संत कवियों में दादू दयाल, कबीर, रैदास, सुंदरदास, रज्जब, दयाबाई आदि अनेक ऐसे संत हुए जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से धर्म के मूल को समझाने का प्रयास किया। संतों द्वारा ऐसे धर्म को स्वीकार किया गया जो साधारण जन समुदाय के साथ संपर्क स्थापित करने के साथ-साथ उनकी आशा-निराशाओं में भागीदारी बनने योग्य हो। डॉ. रघुवंश का कथन है कि "जप-तप, नियम-संयम और पूजा-अर्चा करके भी व्यक्ति जीवन का सही मार्ग नहीं पाता, जिस प्रकार कागज़ पर लिख-लिख कर मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है, वह मन के मूल-भाव-तत्व को नहीं ग्रहण कर पाता। मनुष्य संसार के अंधेरे कुहासे में भटकता है और जीवन के सत्य को नहीं पाता।"[1]

तत्कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था मानव के कर्मों पर आधारित न होकर जन्म पर आधारित होने लगी। ऐसी व्यवस्था के कारण नीची जाति वालों को हेय की दृष्टि से देखा जाने लगा। उन्हें अधिकारों से वंचित रखा जाने लगा। संतो के द्वारा ऐसी कुव्यवस्था का डटकर विरोध किया गया। संत नामदेव द्वारा जाति-व्यवस्था व ऊँच-नीच के भेदभाव को व्यर्थ बताते हुए मानव को रात-दिन प्रभु की सेवा में लगे रहने का संदेश दिया गया। वह कहते हैं-

"का करौं जाति का करौं पांती।
राजाराम सेऊं दिन राति" [2]।।

संत कवियों ने अपने काव्य में स्पष्ट रूप से जाति-पांति के बंधनों को अस्वीकार किया और मानव समानता का संदेश दिया। इस संबंध में डॉ. जयकिशन प्रकाश खंडेलवाल का कथन है कि "संतों ने जाति-पाति के भेदभाव एवं उंच नीच को समाप्त करके तथाकथित निम्न जातियों को तथाकथित उच्च जातियों के अमानुषिक अत्याचार से बचाकर उनमें आत्मबल का संचार किया। संतों की दूसरी देन हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का प्रयास है जो तत्कालीन परिस्थितियों के परिक्षेत्र में अपना महत्व रखता है।"[3] संत दादूदयाल जाति-पाति के घोर विरोधी थे। इन्होंने अपने काव्य के माध्यम से ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाकर मानव को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। दादू ने कहा कि प्रभु भक्ति के लिए विशिष्ट जाति की जरूरत नहीं है। नीच से नीच जाति का व्यक्ति भी सच्ची भक्ति के द्वारा ईश्वर को पा सकता है, क्योंकि परमात्मा की भक्ति केवल उच्च वर्ग की सम्पत्ति नहीं, परमात्मा तो कण-कण में व्याप्त है, जिसके लिए कोई ऊँच-नीच नहीं-

"दादू सब रंग रंगि रह्या, दूजा कोई नाहिं।
सब रंग तेरे तै रंगे, तूही सब रंग मांहि"[4]।।

संत काव्य में अवतारवाद का विरोध दिखाई देता है क्योंकि मध्यकाल में ईश्वर को केवल अवतारों तक सीमित माना जाने लगा। धर्म के नाम पर लोग अलग-अलग अवतारों में विश्वास करने लगे। इसी अवतारवाद का परिणाम बहुदेववाद व मूर्ति-पूजा के रूप में दिखाई देने लगा। कबीर और रविदास द्वारा भी अपनी वाणी के माध्यम से इसका विरोध किया गया। संत पलटूदास अवतारवाद का विरोध करते हुए कहते है कि मृत्यु से कोई भी बच नहीं सकता, चाहे वह कितना भी महान हो। आगे पलटू कहते हैं कि राम, कृष्ण और परशुराम भी मृत्यु से नहीं बच पाए। वस्तुतः दस अथवा चौदह अवतार काल के वशीभूत हुए हैं।

"राम कृस्न परशुराम ने मरना किया कबूल।
मरना किया कबूल मरने से बचै न कोई,
दस चौदह अवतार, काल के बसि में होई"[5]।।

अवतारवाद के परिणाम स्वरुप अनेक शक्तियों ने देवी-देवताओं का रूप धारण किया। जनसाधारण इन देवी-शक्तियों की उपासना पद्धतियों में फंसकर अनेक अंधविश्वासों से ग्रसित होने लगी। ऐसे समय में संत कवियों के द्वारा बहुतदेवाद का विरोध करते हुए ईश्वर के मूल को समझाने का प्रयास किया गया। संत सुंदरदास कहते है की समस्त जगत् अपने अंदर निवास करने वाले परम तत्व को भूलकर देवी-देवताओं की उपासना व पूजा पाठ करके अपने जीवन का उद्धार करने में लगा हुआ है। इस तरह से मानव कल्याण संभव नहीं हो सकता-

"कोई शिव ब्रह्मा जपे रे कोई विष्णु अवतार।
कोई देवी देवता इहां उरझ रह्यो संसार"[6]।।

संत पलटू साहब भी बहुदेववाद का खण्डन करते हुए कहते है कि "देवी-देवताओं की पूजा से परम-पद प्राप्त नहीं हो सकता अपितु ये तो नरक भेजने वाले हैं।"[7]

संत कवियों द्वारा धर्म के नाम पर की जा रही मूर्ति पूजा का खंडन किया गया। उनका मत था कि ईश्वर का साक्षात्कार बाहरी मूर्तियों में नहीं, बल्कि अंतरात्मा की शुद्धि और प्रेम में है। मूर्ति पूजा पर प्रहार करते हुए कबीर दास भी कहते है कि पत्थर पूजने से परमात्मा मिल जाता तो मैं पहाड़ पूजने को तैयार हूं। रैदास भी कहते है कि यदि मन पवित्र है तो बाहरी तीर्थयात्राओं या मूर्ति पूजा की आवश्यकता नहीं। इसी तरह दादू दयाल भी विरोध करते हुए कहते है कि देवता झूठे हैं, उसकी सेवा मिथ्या है, पूजा और पुजारी सब झूठे हैं-

"झूठे देवा, झूठी सेवा, झूठी केर पसारा।
झूठी पूजा, झूठी पाती, झूठा पूजनहारा"[8]।।

संत नामदेव मूर्तिपूजा और बाह्य आडम्बरों के स्थान पर प्रेम व भक्ति के महत्त्व पर ज़ोर देते कहते है कि संसार के कण-कण में परमात्मा का वास है। मैं किसी पेड़ की पत्ती तोड़कर पूजा नहीं करूंगा, न ही किसी पत्थर की मूर्ति की उपासना करूंगा, और न ही किसी मंदिर में जाकर देवता का ध्यान करूंगा। क्योंकि हर जीव में परमात्मा का वास है, इसलिए किसी भी जीव को में पीड़ा नहीं दूंगा।

पाती तोड़ि न पाहन पूजी, देवल देव न ध्याऊंगा।
पांति पांति परसोतम राता, ताकू मैं न सताऊंगा।।[9]

संत कवियों द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त हिंसा का घोर विरोध किया गया। धर्म के नाम पर की

जा रही पशु बलि पर प्रहार किया गया। किस तरह मनुष्य अपने स्वाद की तृप्ति के लिए पशु तथा पक्षियों को मारकर उसका भक्षण करते है। दुराचारी तांत्रिकों द्वारा मांस व मदिरा का सेवन किया जाता था। धर्म के नाम पर पंडित व मुल्ला एक ओर शास्त्रों का अध्ययन करते है तो दूसरी और पशु बलि, जीवों का वध करते है। संतों द्वारा ऐसे द्दष्ट धर्म के ठेकेदारों पर वाणी के माध्यम से प्रहार किए गए। दादूदयाल हिंसा करने वाले मुल्ला व पंडितों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि-

"काला मुँह कर करद का, दिल से दुरि निवार।
सब सूरत सुबहान की, मुल्ला मुग्ध न मार।।"[10]

संत काव्य में पशु व पक्षियों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए अहिंसा का उपदेश दिया गया। जीवघात को सबसे बड़ा अपराध और जीव रक्षा को सबसे बड़ा पुण्य माना गया। संत मलूकदास कहते हैं कि कुंजर, चींटी और मनुष्य सब में उस परम तत्व का वास है। है मानव तू जीव हत्या के नाम पर उस खुदा के गले पर ही छुरी फेरता है।

कुंजर चींटी पशु नर, सब में साहिब एक।
काटै गला कशवका करें सूमा लेख ।।[11]

संतों द्वारा तीर्थ, व्रत, भेष-आडम्बर आदि के प्रति घोर निन्दा व्यक्त की गई। उनका कहना है कि लोग अनेक दुष्कर्म करते हैं और पाप से मुक्त होने के लिए तीर्थ यात्रा और नदियों में स्नान करके स्वयं को मोक्ष का अधिकारी मान लेते हैं। इसका विरोध करते संत नामदेव कहते हैं कि सच्ची पवित्रता और आध्यात्मिकता बाहरी तीर्थयात्राओं से नहीं बल्कि आंतरिक शुद्धता और करुणा से प्राप्त होती है। जीवों को कष्ट न देना, अहिंसा का पालन करना और शुद्ध आचरण ही सच्चा तीर्थ व सच्ची भक्ति है।

"तीरथ जाऊं न जल में पैसूं। जीव जंत न सताऊंगा।
अठसठि तीरथ गुरु लषाये। घट ही भीतर न्हाऊंगा।।"[12]

संत काव्य में तीर्थ यात्रा के विरोध को लेकर दी गई धारणाओं के संबंध में डॉ. वासुदेव सिंह लिखते हैं कि, "संतों ने तीर्थ यात्रा को समस्त कामनाओं की पूर्ति का मापदण्ड मानने का इसलिए भी विरोध किया होगा, क्योंकि उस समय यातायात के साधन न होने के कारण यात्रा अत्यन्त दुष्कर थी, आर्थिक विपन्नता के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था तथा मार्ग में चोर-डकैतों द्वारा लूटमार का भी भय बना रहता था। इसके अतिरिक्त धर्म के ठेकेदार पण्डा-पुरोहितों द्वारा सीधे-साधे ईश्वर भक्तों का अनेक प्रकार से शोषण और उत्पीड़न किया जाता था। यही नहीं इन कवियों का विश्वास था कि जब परमात्मा का वास शरीर में ही है तब उसे खोजने के लिए विभिन्न स्थानों में भटकना निरर्थक है।"[13]

दादूदयाल द्वारा माला, तिलक, वेषभूषा आदि का विरोध किया गया। वे कहते हैं कि इनसे मेरा कोई वास्ता नहीं है। मैं तो केवल अपने अंदर स्थाई रूप से निवास करने वाले परमतत्व को ही अच्छी तरह जानता हूं।

"माला तिलक सूं कुछ नहीं काहू सेती काम।
अत्तरि मेरे एक है, अहि निसि उसका नाम।।"[14]

संत काव्य में ही नहीं वल्कि सकल भारतीय जीवन और वांड्मय में गुरु को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। गुरु को ज्ञान, सत्य और आध्यात्मिक मार्गदर्शक का प्रतीक माना गया। गुरु के प्रति अटूट प्रेम के कारण ही कबीर अपना शरीर गुरु पर न्यौछावर करने के लिए तत्पर थे। सहजीबाई गुरु की महिमा पर प्रकाश डालती कहती हैं कि गुरु की कृपा से मनुष्य आनंद की अनुभूति कर परमतत्व में स्थिर हो जाता है। जीव सांसारिक दुःखों व कष्टों को नहीं भोक्ता क्योंकि गुरु अपने शिष्यों के दुखों को अपने ऊपर ले लेता है।

"निर्मल आनंद देत हो, ब्रह्म रूप करि ले।
जीव रूप की आपदा व्याधा सब करि लेत।।"[15]

गुरु की महिमा का गुणगान करते हुए दादू कहते हैं कि एक लाख चंद्रमा और एक करोड़ सूर्य मिलकर भी अज्ञान के अंधकार को दूर नहीं कर सकते। अज्ञानता का नाश तो एकमात्र गुरु की कृपा से ही होता है।

"इक लष चंदा आणि घर, सूरज कोटि मिलाय।
दादू गुरु गोविंद बिन, तो भी तिमर ना जाइ।।"[16]

इस तरह संतों द्वारा धर्म के नाम पर फैले अंधविश्वासों, रुढ़ियों पर प्रहार करते हुए सहज साधना और नाम स्मरण का गुणगान किया गया। संतों ने अपने काव्य के द्वारा ईश्वर में विश्वास बनाये रखने की प्रेरणा दी। संतों का कहना है कि जीवन में विषम परिस्थितियों ही क्यों ना हो, हमें धैर्य और संतोष का त्याग न कर ईश्वर में विश्वास बनाए रखना चाहिए। संत

सुंदर दास कहते हैं कि सब कुछ ईश्वर के हाथ में है मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं।

"सुंदर अब विश्वास गहि सदा रहे प्रभु साथ।
तेरौ कियौ न होत है, सब कुछ हरि के हाथ।।"[17]

संत काव्य में नाम स्मरण को आध्यात्मिकता का प्रमुख सोपान माना गया है। साधक स्वयं को भूलकर भक्ति में लीन होकर परमतत्व को प्राप्त करता हैं। संत रज्जब नाम-स्मरण पर प्रकाश डालते हुए इसे मुक्ति का सच्चा मार्ग बताते हैं। नाम-स्मरण से सभी वक्ता व श्रोता भवसागर से पार हो जाते हैं।

"साई सुमिरन सत्य है, सद्गति सुमिरन हार।
जन रज्जब युग युग सुखी, वक्ता श्रोता पार।।"[18]

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि संत काव्य में धार्मिक चेतना केवल ईश्वर भक्ति तक सीमित नहीं रही। यह सामाजिक सुधार, आत्मज्ञान, प्रेम और भाईचारे का भी संदेश देती है। संत कवियों ने धार्मिक सहिष्णुता को सामाजिक विकास के लिए आवश्यक माना और अपने साहित्य में आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी सक्रिय रूप से प्रस्तुत की। संतों ने धार्मिक आडम्बरों, अंधविश्वासों और रुढ़िवादी विचारों का विरोध किया और सत्य को समझने और जीने पर बल दिया। संतों ने एकेश्वरवाद का संदेश देकर जनसाधारण को अवतारवाद व बहुदेवोपासना के प्रभाव से मुक्त कराने की कोशिश की। संतों द्वारा मानव कल्याण के लिए व परम तत्व को पाने के लिए सदाचार, नाम स्मरण व गुरु के महत्व पर बल दिया। इसके लिए सामाजिक समरसता, धार्मिक सौहार्द और भाईचारे की भावना को स्थापित करने के लिए जन-जन में चेतना जागृत की।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :-**


1. डॉ. रघुवंश, कबीर एक नई दृष्टि, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं. 1991, पृ.-111.
2. भगीरथ मिश्र एवं राजनारायण मौर्य (सं.), संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पूना विश्वविद्यालयं प्रेस, पूना, 1968, पद 18, पृ.-8.
3. डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम सं. 2020, पृ.-161.
4. डॉ. रविंद्रकुमार सिंह, संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2015, पृ.-156.
5. पलटू साहब की बाणी (तीनों भाग), वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, भाग 1, 2 (1962) भाग 3 (1965), पृ.-44.
6. पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा (सं.), सुन्दर ग्रंथावली (भाग 1, 2), राजस्थान रिसर्च सोसइटी, कलकत्ता, 1993, पृ.-315.
7. पलटू साहब की बानी, भाग 1, 2 (1962), वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, पृ.-44.
8. दादू दयाल की बानी: भाग-1, 2, वेलवीडियर प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.-197.
9. संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 99/2.
10. वियोगी हरि (सं.), संतवाणी, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, संस्करण 2012, पृ.-90.
11. संतवाणी, वियोगी हरि, पृ.-91.
12. संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 99/1.
13. डॉ. वासुदेव सिंह, हिंदी संत-काव्यः समाजशास्त्रीय अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणासी, पृ.-247.
14. संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 110.
15. सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियां, रामलाल पुरी, आत्मा राम एंड संस, कश्मीर गेट, दिल्ली, प्रथम सं. 1953, पृ.-88.
16. दादू दयाल ग्रंथावली, सं. आचार्य परशुराम चतु-र्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, साखी/59.
17. सुन्दर ग्रंथावली (भाग 1, 2), सं. डॉ. रमेशचंद्र मिश्र, किताब घर, दरियागंज, दिल्ली, 1992, पृ.-65.
18. रज्जब बानी, सं. डॉ. ब्रजलाल वर्मा, उपमा प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटड, कानपुर, प्रथम सं. 1963, पृ.-50.


•